श्री निर्वाण लक्ष्मीपति स्तुति

—अध्यात्म के अनन्त वैभव का फलक

समीक्षक : डॉ० राज बुद्धिराजा

श्री निर्वाण लक्ष्मीपति स्तुति कन्नड़ जैन वाङ्मय की अमूल्य निधि है जिसे सर्वसुलभ बनाया है आचार्यरत्न १०८ श्री देशभूषण जी विद्यालंकार ने। सभी जैन कृतियों की तरह प्रस्तुत कृति भी अध्यात्म के अनन्त वैभव और सौन्दर्य से परिपूर्ण है तथा कृतिकार साधना-तपस्या से अभिमंडित है। सांसारिक वैभव को तुच्छ समझकर सतत साधना द्वारा प्रदत्त अमूल्य उपलब्धियों को, वीतरागी सुजनोत्तम वोप्पण कवि ने, जनसाधारण में बांटकर अभूतपूर्व कार्य किया है।

२८ पद्यों वाला यह लघु स्तुति ग्रन्थ आचार्य श्री द्वारा अनूदित है। उनके अन्य अनूदित ग्रन्थों रत्नाकर शतक, अपराजितेश्वर शतक, भरतेश वैभव, भावनासार, धर्मामृत, योगामृत तथा निरंजन स्तुति में इसका महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह ग्रन्थ भेद-विज्ञान से प्रारम्भ होता है तथा ज्ञान, कर्म और उपासना की अनेकानेक सीढ़ियां चढ़ता हुआ जीव के भव्यरूप की परिकल्पना करता है। वस्तुतः इसमें जीव, ब्रह्म और संसार के स्वरूप का चित्रण किया गया है। जीव के अस्तित्व, ब्रह्म की सर्वशक्तिमता तथा संसार के गमनचक्र का वर्णन कर कृतिकार ने मानवीय अज्ञान-अंधकार को दूर करने का भरसक प्रयत्न किया है। जीव की वस्तुस्थिति को स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि वह आत्म-अनात्म स्व-पर का ज्ञान प्राप्त करने के लिए ही ८४ लाख योनियों के जन्म और मृत्यु की वेदना को भोगते हुए केवल मानव-शरीर में ही ज्ञान प्राप्त कर सकता है। जब तक जीव को 'स्व' का ज्ञान नहीं होता तब तक बाह्य सौन्दर्य-ऐश्वर्य में रमण करके अंतहीन पीड़ा भोगता रहता है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि विद्या माया और अविद्या माया के चक्रों में फंसकर जीव स्वयं को भूल जाता है। कृतिकार बार-बार मानव का परिचय जीव के इस 'स्व' से कराते हैं जो अंधकार में विलीन हो गया है। मैं कौन हूं, कहां से और क्यों आया हूं आदि शाश्वत प्रश्न-सत्यों को उभार कर भेदविज्ञान को उत्तर रूप में प्रस्तुत किया गया है। भेदविज्ञान अर्थात् आत्म-अनात्म, सत्य-असत्य, अंधकार-प्रकाश, मृत्यु-अमृत, जीव-शरीर में भेद दृष्टि ही कालान्तर में मोक्ष का कारण बनती है। मोक्ष प्राप्त करने के लिए बंधनों का खोलना अत्यावश्यक है। जिस प्रकार जन्म और मृत्यु जीव के लिए बंधन का कारण है उसी प्रकार पाप और पुण्य भी बारी-बारी से जीव को बांधते रहते हैं। इसलिए निष्काम भाव से सभी कर्मों को करणीय बताया गया है।

नाना प्रकार के सत्यों में से एक शाश्वत सत्य व्यक्ति का सौभाग्य भी है। वही सौभाग्य जिसके आधार पर भविष्य अर्थात् परलोक निर्मित होता है। सौभाग्यशाली व्यक्ति केवल वही है जो अमृत-पान कर उसे पचाने की क्षमता रखता है। वह व्यक्ति भी कम भाग्यशाली नहीं है जो संयमित जीवन व्यतीत करता है। इन्द्रिय और मन पर अंकुश रखने से मानव तप का जीवन व्यतीत कर सकता है और यही तपश्चर्या उसे शाश्वत सुख प्रदान करती है।

जीव के स्वरूप का विवेचन करने के पश्चात् ग्रन्थकार ब्रह्म के विशद रूप का वर्णन करते हैं। ब्रह्म अनादि और सर्वशक्तिमान है। वही उत्पत्ति और विनाश का कारण है। उसकी लीला अपरम्पार है। पूजा, व्रत तथा उपवास से व्यक्ति ब्रह्म के ज्ञान को प्राप्त कर सकता है। पूजा-उपासना भी प्रकारान्तर से मोक्ष का कारण है। व्यक्ति तब तक पूजा-ध्यान नहीं कर पाता जब तक उस पर गुरु की कृपा नहीं होती। वह ब्रह्म ही आदि गुरु है। उसकी अनुकम्पा से ही जीव आयु भोग और कर्मगत बंधनों से छूट पाता है। सत्य तो यह है कि इसी अनुकम्पा के बल पर जीव के पाश अपने आप खुल जाते हैं, अंधकार दूर हो जाता है और ज्ञान की किरणें विकीर्ण होने लगती हैं। उसका वह अज्ञान दूर हो जाता है जिसके प्रभाव से वह शरीर को आत्मा समझने की भूल कर बैठता है। जबकि शरीर का अन्त केवल भस्म है। वस्तुतः ब्रह्म के अस्तित्व को जाने बगैर मनुष्य इहलोक के दुःखों से छूट नहीं सकता।

जीव और ब्रह्म का तत्त्वज्ञानपरक विवेचन करने के पश्चात् कृतिकार अत्यन्त आकर्षक और लुभावने संसार का दर्शन कराते हैं। संसार वह स्थल है जहां जीव संसरण या भ्रमण करता रहता है। जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त के अनेक सुख-मंगल और दुःख-व्याधि जीव इसी संसार में ही भोगता है। नाना प्रकार के भोगों को भोगकर शरीर को छोड़कर वह एक अनजाने लोक में चला जाता है जिसकी खोज में तपस्वी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और मनीषी अपने तन-मन को गला देते हैं। जीव एक स्थिति से दूसरी स्थिति में कब, क्यों और कैसे चला जाता है यही जानने योग्य विषय है। कौन-सी घड़ी में इसका शिशु रूप यौवन और वृद्धावस्था में पहुंच जाता है? किसी को भी नहीं मालूम। जीव और संसार के इसी आश्चर्य को समझने के लिए लेखक ने मानवमात्र के लिए कुछ आदेश दिये हैं जो परमावश्यक हैं। सत्पात्र को दान देना और व्रत-नियम-निष्ठा प्रमुख हैं। दान के लिए सत्पात्र का होना उतना ही आवश्यक है जितना निर्मल दुग्ध के लिए साफ-सुथरा और मंजा बर्तन। निरंतर व्रत-नियम का पालन करने से व्यक्ति को इसी संसार में ही तत्त्वज्ञान की प्राप्ति हो जाती है। वस्तुतः व्रत-नियम जीव पर अंकुश का कार्य करते हैं। इसी अंकुश नियन्त्रण से उसे ज्ञान होता है कि काया, लक्ष्मी और यौवन चंचल है।

प्रस्तुत ग्रन्थ के अंत में कवि शुभ, मंगल, सत्य, अमृत और सुख की कामना करता है। वस्तुतः यह ग्रन्थ अमूल्य है जिसमें जीव, ब्रह्म और संसार का वास्तविक स्वरूप निर्धारित है। भाव अपने आप में इतने सुलझे हैं कि पाठक के मन पर कभी गहरी चोट कर जाते हैं और कभी हृदय को छू जाते हैं। भाव इतने सशक्त हैं कि स्वयमेव भाषा का वस्त्र पहनते चलते हैं। भाषा का कोष इतना समृद्ध है कि लेखक अपनी इच्छा से शब्दों की मुट्ठी भरता और बिखेरता रहता है।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि प्रस्तुत ग्रन्थ हिन्दी वाङ्मय को समृद्ध करता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org